ज्ञान-प्रत्यय, प्रकार, स्त्रोत तथा प्राप्त करने के साधन

- क्या किसी वस्तु को जाने बिना उसके अस्तित्व का ज्ञान हो सकता है?
- हम सत्य और असत्य ज्ञान में कैसे अन्तर कर सकते हैं?
- अज्ञान क्या है?
- क्या वह ज्ञान का ही एक रूप है अथवा उससे भिन्न है?
- ज्ञान की प्रक्रिया क्या है?

- क्या अज्ञेय ऐसी वस्तु है जो ज्ञान से पूर्व ही उपस्थित थी?
- ज्ञान के विस्मरण का क्या अर्थ है?
- ज्ञान की प्रामाणिकता का क्या आधार है?
- ज्ञान की प्रक्रिया में कौन-सी भूलें सम्भव हैं?
- क्या हमारा ज्ञान निश्चित है अथवा केवल अनुभूति और आस्था से हम उसे निश्चित मानते हैं?
- कुछ विश्वासों को अन्य विश्वासों से अधिक प्रामाणिक क्यों माना जाता है?
- ज्ञान के विभिन्न प्रकारों में क्या अन्तर है?
- ज्ञान का विज्ञान और दर्शन से क्या सम्बन्ध है? इत्यादि।

इमेनुएल काण्ट एक जर्मन दार्शनिक थे जिन्होंने ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में एक स्थायी एवं महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी विषय सामग्री, ज्ञान की प्रक्रिया, लक्ष्य, दशाएँ, प्रणालियाँ, प्रामाणिकता एवं भ्रान्तियाँ है। ज्ञानमीमांसा के अन्तर्गत इन सबका विवेचन किया जाता है।

ज्ञानमीमांसा आगमन और निगमन तथा संश्लेषण एवं विश्लेषण विधियों का उपयोग करता है। ज्ञानमीमांसा सम्बन्धी समस्याओं के विषय में दार्शनिकों ने विभिन्न निष्कर्ष दिये हैं, जबकि यथार्थवादी दार्शनिकों के अनुसार ज्ञान वस्तु का ज्ञान है, आदर्शवादी दार्शनिक उसे प्रत्ययों का ज्ञान मानते हैं, जबकि कुछ ज्ञानशास्त्री यह सोचते हैं कि वस्तु की उपस्थिति ज्ञान के लिए अनिवार्य है और इसलिए प्रत्येक ज्ञान ज्ञाता और श्रेय दोनों का ज्ञान है, दूसरों के अनुसार ज्ञेय का ज्ञान ज्ञाता के ज्ञान से भिन्न है। इस प्रकार ज्ञानशास्त्रीय समस्याओं की ओर यथार्थवादी, प्रत्ययवादी, अनुभववादी, बुद्धिवादी और समीक्षावादी दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण अपनाये। ज्ञान की सम्भावना के विषय में अज्ञेयवादी, संशयवादी और रहस्यवादी दार्शनिक भिन्न-भिन्न सम्भावनाएँ बतलाते हैं। इन सभी ने ज्ञान के विभिन्न पहलुओं का विवेचन किया है।

विश्व के ज्ञान से सम्बन्धित समस्याएँ दर्शन का प्रमुख विषय बनी रही हैं। इसलिए ज्ञान-सम्बन्धी विवेचन भी दर्शन (ज्ञानमीमांसा) का एक प्रमुख अंग है। इन विवेचनों का सम्बन्ध मुख्यत: निम्नलिखित चार प्रश्नों के साथ रहा है—

1. ज्ञान क्या है?
2. ज्ञान के साधन क्या है?
3. ज्ञान की सत्यता-असत्यता कैसे निर्धारित की जाती है?
4. विश्व सम्बन्धी हमारे ज्ञान में ज्ञात-ज्ञेय के बीच सम्बन्ध किस प्रकार का होता है?

ज्ञान का अर्थ
(Meaning of Knowledge)

ज्ञान शब्द की कोई व्यापक परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि दर्शनों की प्रत्येक विचारधाराओं ने अपने ढंग से ज्ञान की परिभाषा दी है। जिसका सम्बन्ध द्रव्य अथवा सत्य से होता है।

ज्ञाता और ज्ञेय के पारस्परिक सम्बन्ध को ज्ञान माना जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक ज्ञान में एक ज्ञाता तथा एक ज्ञेय होता है और जब ज्ञाता का ज्ञेय के साथ इन्द्रियों के माध्यम से सम्पर्क होता है, तो ज्ञेय को पदार्थ के सम्बन्ध में एक चेतना होती है और जिसका अस्तित्व है और उसके विशेष गुण हैं। इसी प्रकार की चेतना को ज्ञान की संज्ञा दी जाती है। ज्ञानेन्द्रियों से जो प्रत्यक्षीकरण तथा अनुभव होता है, उसे भी ज्ञान कहते हैं। ज्ञान इन्द्रियों तक ही सीमित नहीं होता अपितु इन्द्रियों से परे भी अनुभूतियाँ होती हैं, उसे भी ज्ञान कहा जाता है।

आदर्शवाद चेतना को ज्ञान की संज्ञा देता है, जो ज्ञानेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों से परे अनुभूतियों से सम्बन्धित है, जबकि प्रयोजनवाद और प्रकृतिवाद ज्ञानेन्द्रियों के प्रत्यक्षीकरण को ही ज्ञान मानते हैं।

ज्ञान के सम्बन्ध में दो प्रमुख विचार हैं—

(1) वास्तविक ज्ञान का स्वरूप

(2) सत्य अथवा द्रव्य का ज्ञान

इनको समझने के लिए तीन बातों को समझना आवश्यक है—

(अ) ज्ञान का स्वरूप

(ब) ज्ञान की अवस्था

(स) ज्ञान का अन्य पक्षों से सम्बन्ध

ज्ञान के स्वरूप को मानसिक घटना तथा मनोवैज्ञानिक क्रिया जैसे—जानना, करना और अनुभूति करना मानते हैं। यही मनुष्य के तीन प्रकार के व्यवहार होते हैं। दार्शनिकों ने ज्ञान को समझने के लिए तार्किक प्रक्रिया का उपयोग किया है।

ज्ञान का सम्बन्ध किसी कार्य के करने की क्षमता से होता है, जैसे—पढ़ना, लिखना, बोलना, सीखना तथा तैरना आदि। ज्ञान का पक्ष वस्तु के गुणों से सम्बन्धित होता है। यह पक्ष कुछ प्रतिज्ञप्तियों से सम्बन्धित होता है। यह प्रदर्शित करता है कि वास्तविक ज्ञान तब होता है जब उसको उस वस्तु को उसके वास्तविक रूप में दिखाया जाये (जैसे—किसी वस्तु को दिखाना) उदाहरणार्थ—यदि हम ताजमहल का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें ताजमहल को आगरा जाकर वास्तविक रूप में देखना होगा और तभी हम उसका वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि इसमें हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ सक्रिय रहती हैं। वास्तविक ज्ञान को हम स्वीकार करते हैं और उसमें कोई प्रतिज्ञप्ति नहीं होती जबकि सत्य अथवा द्रव्य के ज्ञान में प्रतिज्ञप्तियों का विशेष महत्त्व होता है। प्रतिज्ञप्तियों एवं अवधारणाओं के बिना सत्य का ज्ञान नहीं किया जा सकता है।

भारतीय दर्शन के अनुसार ज्ञान का अर्थ

भारतीय दर्शन के अनुसार 'ज्ञान का अर्थ' समझने के लिए चार परिस्थितियों का बोध होना आवश्यक है। ज्ञान के सन्दर्भ में अनेक प्रश्न हैं जिनका अभी तक उत्तर देना शेष है। जिनके कारण ज्ञान की परिभाषाओं में संदेह उत्पन्न होता है। ज्ञान की सैद्धान्तिक समस्या अधिक है क्योंकि सत्य का रूप सुनिश्चित होना चाहिए, जिससे 'ज्ञान' की परिभाषा की जा सके। यह चार परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं—

(1) सत्य की वस्तुनिष्ठता (Reality of Objectivity),

(2) ज्ञान की सार्थकता (Worth of Knowledge)

(3) ज्ञान की सत्यता (Truthfulness of Knowledge) तथा

(4) तार्किक प्रतिज्ञप्ति सत्यता (Truthfulness of Logical Proposition)

इन परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

ज्ञान-प्रत्यय, प्रकार, स्त्रोत तथा प्राप्त करने के साधन

(1) ज्ञान सत्य होना चाहिए, जिससे उसकी वस्तुनिष्ठता का आकलन किया जा सके।

(2) ज्ञान के अस्तित्व में कोई संदेह नहीं होना चाहिए।

(3) ज्ञान की सत्यता की पुष्टि में कोई भी संदेह नहीं होना चाहिए। इसके लिए तीन उप-परिस्थितियाँ की आवश्यकता होती है—

(अ) सम्बन्धित प्रतिज्ञप्तियाँ आन्तरिक अनुभव तथा संवेदनाओं पर आधारित होना चाहिए।

(ब) प्रतिज्ञप्तियों की पुष्टि की जा सके।

(स) ज्ञाता को प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता में विश्वास होना चाहिए।

(4) तार्किक प्रतिज्ञप्ति भी सत्य होनी चाहिए।

भारतीय दर्शन के अनुसार चेतना को ज्ञान की संज्ञा दी जाती है। ज्ञान इन्द्रियों के अनुभव तक ही सीमित नहीं है, अपितु इन्द्रियों से अनुभूतियों को भी ज्ञान मानते हैं। **कर्म योग, ज्ञान योग तथा भक्ति योग ज्ञान के साधन हैं।**

किसी प्रतिज्ञप्ति की सत्यता को जानने का क्या अर्थ है। इसके लिए कुछ परिस्थिति का बोध आवश्यक है।

ज्ञान के सम्बन्ध में परिस्थितियाँ

प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता के लिए चार परिस्थितियाँ आवश्यक होती है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) जब कोई प्रतिज्ञप्ति की अवधारणा होती है तब प्रतिज्ञप्ति सत्य होनी चाहिए, तभी वह ज्ञान का रूप लेती है। परिकल्पना की पुष्टि के बाद ही सिद्धान्त बनता है।

(2) अनेक प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य हो सकती हैं, परन्तु उनकी वैधता की जानकारी नहीं होती है। इसीलिए जिन प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता में विश्वास होता है उसे ज्ञान की संज्ञा देते हैं।

यहाँ पर प्रश्न उठता है कि क्या सत्य में विश्वास होना ही ज्ञान है? इसका उत्तर ना में है, क्योंकि विश्वास बदलता रहता है तथा प्रतिज्ञप्ति की सत्यता भी परिवर्तनशील है।

(3) किसी विश्व को बदलने के लिए कितने प्रमाणों की आवश्यकता है? अनेक प्रमाणों की सहायता से विश्वास को बदल सकते हैं। प्रमाणों की उपलब्धता सीमित नहीं है। यह कहा जाता है कि प्रतिज्ञप्ति की सत्यता के लिए पूर्ण प्रमाण की आवश्यकता होती है।

(4) ज्ञान का रूप सुनिश्चित नहीं है, क्योंकि ज्ञान वृद्धि की सम्भावना बनी रहती है। अनुसंधान ज्ञान वृद्धि की प्रक्रिया मानी जाती है। नवीन अनुभव, अनुभूतियों से ज्ञान में वृद्धि होती रहती है। नवीन प्रतिज्ञप्तियों का प्रतिपादन होता है और उनकी पुष्टि होती रहती है।

अनुभवों को ज्ञान की संज्ञा देने में कठिनाई यह है कि इन्द्रियों से भ्रम भी होता है। मरुस्थल में जल भ्रम होता है। इसलिए विश्व का सम्पूर्ण ज्ञान सत्य नहीं होता है। पुष्टि तथा सत्यता के पश्चात् ही उसे ज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है, परन्तु सभी प्रतिज्ञप्तियों तथा परिकल्पनों की पुष्टि हेतु प्रमाण मिलना सम्भव भी नहीं होता है। इस प्रकार मानवी सम्पूर्ण ज्ञान प्रमाणिकता पर आधारित नहीं होता है। ज्ञान आस्था तथा विश्वास से भी होता है जिसे भक्ति योग कहते हैं। प्रमाण की यथेष्टता भी निश्चित नहीं है कि प्रतिज्ञप्ति की पुष्टि हेतु यथेष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं